हिन्दी साहित्येतिहास के क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन का अवदान

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

राहुल जी 'महापण्डित' थे और वह आर्यसमाजी दृष्टि और वैष्णव–दृष्टि के बाद बौद्ध–दृष्टि अपनाकर चले और उसके साथ–साथ और एक हद तक बौद्ध–दृष्टि का भी अतिक्रमण कर, वह मार्क्सवादी या द्वन्दात्मक भौतिकवादी दृष्टि को मान्यता स्थित हो गये और उन्होंने जो लिखा, उसमें घोषित–अघोषित रूप में मार्क्सवादी दृष्टि–बिन्दु का विनियोग रहा है।

राहुल एक ऐसा व्यक्तिव था, जिसके लिए ज्ञान और सत्य की गवेषणा में ही जीवन की सार्थकता थी। जाहिर है कि किसी भी जीवन–दृष्टि की या विश्व–दृष्टि की सीमाओं को ऐसा व्यक्ति समझ लेना और राहुल जी में तो यह अन्तर्दृष्टि थी ही, अचूक थी, सो वह कई दृष्टियों को क्रमशः अपना–अपनाकर छोड़ते गये और अन्त में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टि और तज्जन्य साम्यवादी सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था के प्रशंसक–प्रचारक बन गये और आजीवन बने रहे।

श्री राहुल सांकृत्यायन असाधारण प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। उनका जीवन और साहित्य दोनों ही बहुआयामी है। जिस प्रकार जीवन में उनकी विचारधारा और आचार–निष्ठा में पतिरवर्तन होता रहा, उसी प्रकार उनका साहित्य भी वैविध्यपूर्ण है। वह सनातनी ब्राह्मणकुल में पैदा हुए, किन्तु कुछ समय पश्चात् ही सनातनी रूढ़ियों का परित्याग कर दिया। सनातन धर्म से आर्यसमाज, आर्यसमाज से बौद्धधर्म और बौद्धधर्म से साम्यवाद की ओर बढ़ते गये और उनकी विशेषता यह है कि वह जब जिस विचारधारा की ओर मुड़े, उससे सम्बद्ध साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। प्रारम्भ में वाराणसी में संस्कृत–साहित्य और दर्शन का अध्ययन किया कलकत्ता–प्रवास में अंग्रेजी साहित्य पर अधिकार जमाया, आर्यसमाजी बनने पर वेदों की ओर मुड़े, बौद्धधर्म स्वीकार करने के पश्चात् पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तिब्बती, चीनी, जापानी, सिंहली आदि अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करके, इसमें उपलब्ध अधिकांश ग्रंथों का चिन्तन–मनन किया और साम्यवाद में दीक्षित होने पर कार्लमार्क्स, लेनिन, स्टालिन आदि के सिद्धान्तों और मान्यताओं को आत्मसात् किया।

उनकी वृत्ति भी यायावरी थी। वह आजीवन देश–विदेश की यात्राएँ करते रहे, बौद्ध साहित्य के उद्धारार्थ उन्होंने तिब्बत की चार बार यात्रा की, लंका में तो वह अनेक वर्ष रहे। इसके अतिरिक्त यूरोप के अनेक देशों–जापान, कोरिया, मंचूरिया, रूस तथा चीन और नेपाल की यात्रा करते रहे। इस पर्यटक–वृत्ति और व्यापक अध्ययन से अर्जित अनुभव के आधार पर उन्होंने लगभग 150 ग्रंथों की रचना की। लगभग 36 वर्ष (1927–1963) के लेखन–काल की अवधि में उनके द्वारा लिखा गया साहित्य मात्रा और परिणाम दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह साहित्य उपन्यास, कहानी, शब्द–कोश, जीवनी, दर्शन, देश–दर्शन, बौद्धधर्म, नाटक, यात्रा–साहित्य, साम्यवादी साहित्य, विज्ञान, संस्कृत, अपभ्रंश और तिब्बती आदि के अत्यन्त व्यापक क्षितिज का स्पर्श करता है। कहने का

तात्पर्य यह है कि उन्होंने इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य, भाषा–शास्त्र, राजनीतिशास्त्र, लोक साहित्य, धर्म, दर्शन आदि विविध क्षेत्रों को अपने लेखन का विषय बनाया। उन्होंने मौलिक साहित्य रचा ही साथ ही अनेक भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद और संपादन भी किया और उनके समूचे साहित्य में उनकी अनुसंधित्सु वृत्ति के प्रचुर प्रमाण पद–पद पर मिलते हैं। यहाँ हम उनके विशाल वाड्मय से एक ग्रंथ–रत्न 'हिन्दी काव्यधारा' के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि हिन्दी साहित्येतिहास के क्षेत्र में श्री राहुल जी का क्या अवदान रहा है ? यद्यपि प्रस्तुत ग्रंथ वैसा इतिहास–ग्रन्थ नहीं है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल का इतिहास–ग्रंथ ! फिर भी इससे राहुल जी की इतिहास–दृष्टि का पूरा पता चल जाता है।

'हिन्दी काव्यधारा' का सर्वप्रथम प्रकाशन 1945 में हुआ था। इस कृति में उन्होंने हिन्दी साहित्य को पाँच काल–खण्डों में विभक्त किया है। उनमें नाम हैं –

1. सिद्ध सामन्त युग
2. सूफी युग
3. भक्त युग
4. दरबारी युग
5. नवजागरण युग

राहुल जी ने हिन्दी साहित्य का आरम्भ सन् 760ई0 में माना है और प्रथम युग की अवधि सन् 760 से 1300ई0 तक स्वीकार किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में केवल सिद्ध सामन्त युग के 47 कवियों की रचनाओं के प्रमुख अंश संकलित किये गये हैं और आलोच्य युग के वैशिष्ट्य प्रतिपादन करने के लिए 55 पृष्ठों की विस्तृत भूमिका लिखी गयी है। भूमिका ही राहुल जी की इतिहास–दृष्टि और गवेषक–वृत्ति का प्रमाण है।

इसके वैशिष्ट्य का मूल्यांकन करने के पूर्व हमें 'हिन्दी काव्यधारा' के पूर्व लिखे गये हिन्दी के इतिहास–ग्रंथों का अवलोकन करना होगा। हिन्दी साहित्येतिहास का लेखन–काल सन् 1839 से माना जाता है और फ्रेंच लेखक गार्सा द तासी को हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास–लेखक माना जाता है। उन्होंने 'इस्त्वार द ला लितरेत्यूर एंदुई ऐंदुस्तानी' में 666 उर्दू–कवियों के साथ ही हिन्दी के 72 कवियों की वर्णानुक्रम से सूची दी है। इसमें काल–विभाजन, नामकरण, प्रवृत्ति–विवेचन आदि कुछ भी नहीं किया गया है। यही स्थिति उनके बाद उर्दू भाषा में मौलवी करीमुद्दीन द्वारा लिखित 'तबका तश्शुअरा' (सन् 1848) तथा हिन्दी में श्री शिवसिंह सेंगर द्वारा लिखित 'शिवसिंह सरोज' (सन् 1878) की भी है। काल–विभाजन तथा नामकरण का यहाँ भी अभाव है। अतः इन्हें इतिहास–ग्रंथ न कहकर 'इतिहास–संग्रह' कहना अधिक समीचीन होगा। इनके पश्चात् सन् 1898 ई0 में ग्रियर्सन ने 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ नार्दर्न हिन्दुस्तान' नामक इतिहास–ग्रंथ लिखा। सच्चे अर्थों में यह प्रथम इतिहास–ग्रंथ है। इसमें 951 कवियों का विवरण दिया गया है और सर्वप्रथम काल विभाजन तथा नामकरण का प्रयास किया गया है। ग्रियर्सन ने हिन्दी का आरम्भ 700 ई0 में माना है और प्रथम युग को 'चारण काल' की संज्ञा दी है। इसके पश्चात् हिन्दी में मिश्रबन्धुओं इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबन्धु' विनोद लिखा गया। यह ग्रंथ सन् 1913 में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इसमें 4591 कवियों तथा लेखकों का विवरण दिया गया है। मिश्रबन्धुओं ने भी हिन्दी भाषा का आरम्भ सं0–700 के लगभग अनुमानित किया है। उन्होंने प्रथम युग को 'आरम्भ काल' कहा है और उसे दो भागों में बाँटा है–

1. पूर्वारम्भिक काल (सं0 700–1343)
2. उत्तरारम्भिक काल (सं0 1344–1444)

दोनों खण्डों को मिलाकर उन्होंने प्रथम युग को आदि प्रकरण कहा है और पुष्य या पुण्ड (सं0 770) को हिन्दी का प्रथम कवि माना है। उन्होंने प्रारम्भिक काल के अन्तर्गत 18 कवियों का नाम गिनाया है।

मिश्रबन्धुओं के पश्चात् अंग्रेजी में दो छोटे–छोटे इतिहास–ग्रंथ एडविन ग्रीव्स और एफ0ई0के0 द्वारा लिखे गये, किन्तु साहित्येतिहास के विकास में उनका विशेष योगदान नहीं है। इनके पश्चात् हिन्दी का सुप्रसिद्ध और सर्वाधिक महत्वपूर्ण इतिहास–ग्रंथ आया, रामचन्द्र शुक्ल ने सं0 1986 (1929 ई0) में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा। इसका दूसरा संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण सं0 1994 (सन् 1937) मे प्रकाशित हुआ। यह ग्रंथ काल–विभाजन, नामकरण तथा प्रवृत्ति–विवेचन आदि दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती लिखित इतिहास–ग्रंथों से श्रेष्ठ है ही, परवर्ती इतिहास–लेखन के लिए भी आलोक–स्तम्भ का कार्य करता रहा है। इन प्रमुख इतिहास–ग्रंथों के अतिरिक्त राहुल जी के पूर्व इस क्षेत्र में बाबू श्यामसुन्दरदास, डॉ0 रमाशंकर शुक्ल रसाल, डॉ0 रामकुमार वर्मा आदि विद्वानों द्वारा भी कार्य किये गये, किन्तु इनकी इस दिशा में विशेष भूमिका नहीं परिलक्षित होती।

इनके पश्चात् श्री राहुल सांकृत्यायन की 'हिन्दी काव्यधारा' (सं0 1945) प्रकाश में आयी। इस कृति का कई दृष्टियों से महत्व है। उनमें मुख्य है–

1. हिन्दी भाषा की प्राचीनता और व्यापकता प्रमाणित करना।
2. आदि काल का नामकरण
3. प्रवृत्ति–विवेचन
4. नये कवियों की खोज

राहुल जी के समय तक जितने इतिहास–ग्रंथ लिखे गये, उनके लेखकों में हिन्दी भाषा तथा सहित्य के उद्भव के सम्बन्ध में प्रायः दो प्रकार के मत मिलते हैं। विद्वानों का एक वर्ग हिन्दी साहित्य का आरम्भ 7वीं–8वीं शताब्दी से मानता है और दूसरा 10वीं–11वीं शताब्दी से। ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, गुलेरी जी, काशीप्रसाद जायसवाल और राहुल सांकृत्यायन प्रथम वर्ग में आते हैं तथा रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा आदि दूसरे वर्ग में।

वस्तुतः हिन्दी साहित्य के उद्भव–काल का प्रश्न भाषा की उत्पत्ति के साथ जुड़ा हुआ है। मूल प्रश्न यह है कि हिन्दी भाषा का आरम्भ कब से माना जाय ? अपभ्रंश और हिन्दी में क्या सम्बन्ध है ? अपभ्रंश स्वतन्त्र भाषा है अथवा पुरानी हिन्दी या हिन्दी ? हिन्दी साहित्य के जिन इतिहासकारों ने 7वीं–8वीं शताब्दी को हिन्दी का उद्भव–काल माना है, उनमें मिश्रबन्धुओं को छोड़कर लगभग सभी ने अपभ्रंश की रचनाओं को हिन्दी या पुरानी हिन्दी नाम से अभिहित किया है। गुलेरी जी का कहना है कि 'अपभ्रंश कहाँ समाप्त होती है और पुरानी हिन्दी कहाँ आरम्भ होती है, इसका निर्णय करना कठिन है किन्तु रोचक और बड़े महत्व का है। इन दो भाषाओं के समय और देश के विषय में कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिन्हें अपभ्रंश भी कह सकते हैं और पुरानी हिन्दी भी।' अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के निकट सम्बन्ध की ओर संकेत करते हुए उन्होंने यह भी कह दिया कि 'विक्रम की सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता है। विभक्तियाँ घिस गयी हैं, खिर गयी है, एक ही विभक्ति 'है' या 'अहै' कई काम देने लगी है। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का काम चलने लगा है।' गुलेरी जी से मिलता–जुलता मत काशीप्रसाद जायसवाल का भी है। उन्होंने लिखा है कि 'काव्यगत भाषा अपभ्रंश प्राकृत से दूर और हिन्दी व्याकरण के निकट है। अतः उसे पुरानी हिन्दी कहने में हमें संकोच नहीं होता।'

इन दोनों की अपेक्षा राहुल जी की मान्यता अधिक स्पष्ट है। उनका कथन है कि 'अपभ्रंश' और हिन्दी में मूलतः कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही भाषाएँ हैं। अपभ्रंश और आज की हिन्दी (खड़ीबोली, ब्रजी, अवधी) में अन्तर इतना ही है कि एक में शुद्ध संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग बिल्कुल वर्जित है, जबकि आज की साहित्यिक भाषा में मुश्किल से तद्भव शब्दों का प्रयोग होता है। सामान्यतः वह मानते हैं कि 'संसार में कोई वस्तु अचल नहीं होती। भाषा में भी निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यहाँ तक कि दादा–दादी की भाषा से पौत्र–पौत्रियों की भाषा बदल जाती है। हिन्दी साहित्य का प्रथम युग (सं0 760–1300 ई0) लगभग पाँच शताब्दियों का रहा। इस युग में भी सरहपा (760 ई0) और राजशेखर सूरि (1300 ई0) के बीच की पाँच सदियों में भाषा अचल नहीं बनी रही।' किन्तु इस नैसर्गिक परिवर्तन के होते हुए भी राहुल जी यह दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित करते हैं कि प्रथम युग की भाषा उससे भी कहीं अधिक हिन्दी भाषा है, जितनी कि आज की मालवी, मारवाड़ी, मल्ली (भोजपुरी) और मैथिली।

राहुल जी को तो अपभ्रंश नाम पर भी आपत्ति है। उनका मत है कि 'अपभ्रंश' इसे इसलिए कहते हैं कि इसमें संस्कृत शब्दों के रूप भ्रष्ट नहीं, अपभ्रष्ट, बहुत ही भ्रष्ट हैं, इसीलिए संस्कृत–पंडितों को ये जाति–भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे। लेकिन शब्दों का रूप बदलते–बदलते नया रूप लेना अपभ्रष्ट होना दूषण नहीं, भूषण है। संस्कृत, पालि, प्राकृत से अपभ्रंश के अन्तर और हिन्दी से अभिन्नता सिद्ध करते हुए वह कहते हैं कि 'यहाँ आकर भाषा में असाधारण परिवर्तन हो गया। उसका ढाँचा ही बिल्कुल बदल गया, उसने नये सुबन्तों, तिड़न्तों की सृष्टि की, और ऐसी सृष्टि की है जिससे वह हिन्दी से अभिन्न हो गयी है और संस्कृत–पालि–प्राकृत से अत्यन्त भिन्न।' इस भाषा के लिए एक अन्य नाम प्रचलित था–देशी भाषा। राहुल जी इसे 'देशी भाषा' कहना ही अधिक उपयुक्त समझते हैं। इस भाषा में 13वीं सदी तक तद्भव शब्दों की प्रधानता रही, किन्तु 14वीं सदी से भक्ति आन्दोलन के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों ने न केवल संस्कृत के ग्रंथो–भागवत, वाल्मीकि रामायण आदि से विषय–चयन किया, अपितु संस्कृत की शब्दावली भी ग्रहण करने लगे। धीरे–धीरे संस्कृत के ग्रंथों के साथ ही संस्कृत भाषा के शब्दों के प्रति आकर्षण बढ़ता गया और ज्यों–ज्यों हिन्दी भाषा संस्कृत से तादात्म्य स्थापित करती गयी, त्यों–त्यों अपभ्रंश की देशी भाषा के प्रति विरक्ति बढ़ती गयी और 'स्वयंभू आदि महान कवियों की कृतियों का पठन–पाठन छूटने लगा और धीरे–धीरे वह बिल्कुल विस्मृत हो गयी।' वैसे 'स्वयंभू की भाषा की क्रियाओं और कितने ही कुंजी के शब्दों को देखने से वह अवधी के सबसे नजदीक मालूम होती है।'

इस प्रकार राहुल जी प्राकृत के बाद हिन्दी का आविर्भाव–काल मान लेते हैं। उनकी दृष्टि में अपभ्रंश और हिन्दी की शब्दावली में मात्र रूपगत भेद हैं। मूलतः दोनों एक ही हैं। यदि राहुल जी की मान्यता स्वीकार कर ली जाय, तो अपभ्रंश के नाम से उपलब्ध विशाल साहित्य हिन्दी की सम्पत्ति बन जाएगा। इससे हिन्दी की प्राचीनता भी प्रमाणित हो जाएगी किन्तु अपभ्रंश के अस्तित्व को नकारना अथवा सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी साहित्य घोषित करना उचित नहीं प्रतीत होता। प्रायः सभी भाषा– वैज्ञानिकों, वैयाकरणों, साहित्य के समीक्षकों और अपभ्रंश के लेखकों द्वारा अपभ्रंश के आरम्भ और विकास की स्पष्ट रेखा निर्धारित की गयी है। हेमचन्द्र, त्रिविक्रम, लक्ष्मीधर, मार्कण्डेय आदि के व्याकरण–ग्रंथों में अपभ्रंश का उल्लेख है। भरतमुनि, भामह और दण्डी ने बोली या विभाषा के रूप में अपभ्रंश का उल्लेख किया हैं रुद्रट (नवीं शती), राजशेखर (10वीं शताब्दी), मम्मट (11वीं शताब्दी), वाग्भट्ट (12वीं शताब्दी), जिनदत्त

अमरचन्द्र (13वीं शती) आदि ने अपभ्रंश के अस्तित्व को स्वीकार किया है। स्वयंभू और पुष्पदंत आदि कवियों ने भी अपभ्रंश का नामोल्लेख किया है।

इस सम्बन्ध में मेरी अवधारणा है कि प्रत्येक युग में शिष्ट भाषा के साथ ही लोकभाषा भी प्रचलित रहती है और दोनों भाषाओं में साहित्य–रचना भी होती रहती है। सातवीं शताब्दी से 12वीं–13वीं शताब्दी तक भी भाषा के दो रूप विद्यमान थे–एक शिष्ट अपभ्रंश और दूसरा लोकभाषा। पउमचरिउ, हरिवंशपुराण, महापुराण, जसहर चरिउ, णायकुमार चरिउ, भविसयत्तकहा, करकण्ड चरिउ आदि की भाषा का जो स्वरूप है, परमात्मप्रकाश, योगसार, दर्शनसार, सावयधम्मदोहा, पाहुड़ दोहा और सिद्धों की रचनाओं की भाषा उससे भिन्न है। इनमें जो भाषा–भेद है, वह सहज ही परिलक्षित हो जाता है। प्रथम वर्ग की रचनाओं की भाषा प्राकृत के अधिक निकट है। उसे हिन्दी या पुरानी हिन्दी किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता, जबकि दूसरे वर्ग की रचनाओं की भाषा अपेक्षाकृत हिन्दी के अधिक निकट है। स्वयंभू, योगीन्दु मुनि और सरहपाद समकालीन थे। तीनों आठवीं शताब्दी के कवि थे। लेकिन तीनों की भाषा एक नहीं है। स्वयंभू की भाषा शिष्ट अपभ्रंश है और योगीन्दु तथा सरह की भाषा लोक या जन भाषा। इसी प्रकार धनपाल और देवसेन दोनों 10वीं शताब्दी के थे और उनके थोड़े ही परवर्ती मुनि रामसिंह। लेकिन धनपाल की भाषा स्वयंभू जैसी है और देवसेन तथा मुनि रामसिंह योगीन्दु मुनि के निकट है। पउमचरिउ और भविसयत्तकहा की भाषा को पुरानी हिन्दी नहीं कहा जा सकता, जबकि 'योगसार', 'दोहाकोश' और 'पाहुड़ दोहा' के अनेक शब्द मूल रूप में अथवा सामान्य रूप–परिवर्तन से हिन्दी के कहे जा सकते हैं। भाषा के उक्त दो रूप न केवल 8वीं या 10वीं शती में विद्यमान थे, अपितु 13वीं–14वीं शताब्दी तक दोनों भाषा–रूपों में काव्य–रचना होती रही। 13वीं शताब्दी के महयंदिण मुनि के 'दोहा पाहुड़' की भाषा हिन्दी या पुरानी हिन्दी है और 14वीं शताब्दी के विद्यापति की 'कीर्तिलता' की भाषा अपभ्रंश या अवहट्ट है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 7वीं–8वीं शताब्दी से ही परिनिष्ठत अपभ्रंश के साथ ही समानान्तर रूप से लोकभाषा भी प्रवहमान् थी और दोनों में समान रूप से काव्य–रचना हो रहीथी। वस्तुतः स्वयंभू ने 'देशी भाषा', विद्यापति ने 'देसिल बयना', कबीर ने 'भाषा बहता नीर' और गोस्वामी तुलसीदास ने 'भाषा भणिति' आदि उक्तियों द्वारा लोकभाषा की ओर संकेत किया है। हेमचन्द्र का 'देशी नाममाला' इसी लोकभाषा का कोश है। राहुल सांस्कृत्यायन भी 'देशी भाषा' द्वारा इसी का संकेत कर रहे हैं। इस प्रकार राहुल जी की यह मान्यता ठीक है कि हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रारम्भ 7वीं–8वीं शताब्दी से हुआ किन्तु परवर्ती शताब्दियों में जो देशी भाषा या लोकभाषा की रचनाएँ हैं, हम उन्हें ही हिन्दी की आदिकालीन रचनाएँ मानेंगे, शिष्ट अपभ्रंश की रचनाओं को अलग रखना ही न्यायसंगत होगा।

हिन्दी की प्राचीनता के साथ ही राहुल जी ने उसकी व्यापकता पर भी विचार किया है। उनकी मान्यता है कि मध्यकाल में न केवल उत्तर भारत की समस्त भाषाएँ एक–दसूरे के निकट थीं, अपितु हिमाचल से गोदावरी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक के कवियों ने हिन्दी की समृद्धि में योगदान दिया है। 'हिमालय–गोदावरी और सिन्धु–ब्रह्मपुत्र के बीच यद्यपि बहुत–सी बोलचाल की भाषाएँ थीं, मगर उनके साथ सबकी एक सम्मिलित भाषा भी थी।' 'जहाँ सरहपा और शबरपा बिहार–बंगाल के निवासी थे, वहाँ अब्दुल रहमान का जन्म मुल्तान में हुआ था। स्वयंभू और कनकामर शायद अवधी और बुंदेली क्षेत्र–युक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के थे, तो हेमचन्द्र और सोमप्रभ गुजरात के। रसिक तथा आश्रयदाता होने के कारण मान्यखेट (मालखेड) (निजाम हैदराबाद) का भी इस साहित्य के सृजन में हाथ रहा है।'

आदिकाल का नामकरण तथा काव्य–प्रवृत्तियाँ

हिन्दी साहित्येतिहास के क्षेत्र में राहुल जी का एक अन्य अवदान आदिकाल के नामकरण से सम्बद्ध है। राहुल जी के पूर्व ग्रियर्सन ने प्रथम युग को 'चारण काल', मिश्रबंधुओं ने 'आरंभिक काल', रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' और रसाल जी ने 'जयकाव्य' की संज्ञा दी थी। राहुल जी ने आदिकाल को 'सिद्ध सामन्त युग' नाम दिया। किसी युग के नामकरण मे प्रायः यह ध्यान रखा जाता है कि नाम ऐसा हो जो युग की समस्त अथवा अधिकांश प्रवृत्तियों का बोधक हो तथा अंतर्विभाजन का सुभीता हो। 'चारण काल' अभिधानकर्ता के आधार पर किया गया है। यह तद्युगीन प्रवृत्तियों का सम्यक बोध नहीं कराता। चरणों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कवि भी इस युग में काव्य–रचना कर रहे थे। उनको कहाँ रखा जाएगा ? आरम्भिक काल केवल समय–बोधक हैं, प्रवृत्ति–बोधक नहीं। रामचन्द्र शुक्ल ने नामकरण पर गहराई से विचार किया है। उन्होंने आदिकालीन बाहर ग्रंथों को ही प्रामाणिक माना है और निष्कर्ष निकाला है कि 'इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से 'आदिकाल' का लक्षण–निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से अंतिम दो (खुसरो की पहेलियाँ, विद्यापति की पदावली) तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अतः आदिकाल का नाम 'वीरगाथा–काल' ही रखा जा सकता है।' शुक्ल जी के नामकरण में कुछ असंगतियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। उन्होंने जिन बाहर रचनाओं को प्रामाणिक माना है, उनमें से पाँच (खुमान रासो, हमीर रासो, विजयपाल, रासो, कीर्तिलता और पदावली) परवर्ती हैं, तीन रचनाएँ (जयचन्द्र प्रकाश, जयमयंक जस चन्द्रिका और कीर्तिपताका) नोटिस मात्र हैं तथा दो (परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो) के मूल रूप सुरक्षित नहीं है। इस प्रकार केवल 'अमीर खुसरो की पहेलियाँ' तथा बीसलदेव रासो ही शेष रह जाती है, जो वीरगाथाएँ नहीं है। अतः प्रथम युग को 'वीरगाथाकाल' कैसे कहा जा सकता है ? इस नामकरण से उस युग की धार्मिक, आध्यात्मिक तथा श्रृंगारपरक रचनाएँ भी छूट जाती हैं। रसाल जी द्वारा किया गया नामकरण 'जयकाव्य' भी चारणकाल अथवा वीरगाथाकाल से सदृश ही है। यह भी व्यापक प्रवृत्ति का बोधक नहीं है।

इनकी अपेक्षा राहुल जी द्वारा किया गया नामकरण अधिक व्यापक है। उनकी दृष्टि में प्राचीन हिन्दी में दो मुख्य प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं–एक तो सिद्धों का साहित्य समाज के बहुत बड़े भाग को प्रभावित कर रहा था, दूसरे प्रकार का साहित्य सामन्तों की प्रेरणा से लिखा जा रहा था। उस युग के कवि सामान्यजन के यातनामय जीवन का चित्रण न करने के लिए विवश थे, क्योंकि 'यदि कोई आदमी तत्कालीन भोगी समाज के विरुद्ध लिखने के लिए अपनी कवि–प्रतिभा का कुछ भी दुरुपयोग करता तो वह केवल पुरोहितों के धर्म–दण्ड का ही भागी नहीं होता, बल्कि उसके सर पर पड़ता क्रूर राजदण्ड, छिपकर हत्या, भयंकर शारीरिक यातना, सीधे शूली, देश और समाज से निष्कासन और अपमान।' अतः कविगण अपने 'स्थूल शरीर' और कीर्ति शरीर दोनों ही के नष्ट होने के भय से इतर विषयों पर काव्य–रचना से विरत रहे। इस प्रकार राहुल जी तत्कालीन आर्थिक स्थिति और सामन्ती व्यवस्था का सर्वेक्षण करते हुए उस युग में लिखे गये साहित्य के कारणों पर भी प्रकाश डालते हैं। उनको 'सिद्ध सामन्त युग' में तीन प्रमुख काव्य–प्रवृत्तियाँ ही परिलक्षित होती हैं–

1. रहस्यवाद या आध्यात्मिक भूल–भुलैया
2. निराशावाद
3. युद्धवाद या वीररस

उनके अनुसार 'ये तीनों ही काव्य भावनाएँ उस वक्त के शासक समाज की आवश्यकता के लिए बिल्कुल उपयुक्त थीं।' युद्ध सामन्तों के जीवन का अभिन्न अंग था, अतः कविगण वीररसात्मक रचनाएँ करते थे। युद्ध में जय ही नहीं, कभी–कभी पराजय का भी सामना करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में सामन्त के लिए निराशा आवश्यक थी। उसको भूल जाने के लिए आध्यात्मिक भूल–भुलैया या रहस्यवाद भी उतना ही आवश्यक था। सिद्धों की रचनाएँ इनसे अलग स्वतंत्र वातावरण में लिखी जा रही थीं, इसलिए उनका विषय भी भिन्न है।

नये कवियों की खोज

साहित्येतिहास के क्षेत्र में राहुल जी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान नये कवियों की खोज है। उन्होंने 'सिद्ध सामन्त युग' के 47 कवियों का परिचय और उनकी कविताओं के कुछ अंशों का संकलन किया है। ये कवि आठवीं सदी से 13वीं सदी तक के हैं। राहुल जी के पूर्व इस काल में अन्तर्गत मिश्रबन्धुओं ने केवल 18 और रामचन्द्र शुक्ल ने 12 कवियों का ही परिचय दिया था। राहुल जी द्वारा दी गयी सूची में 18 सहजयानी सिद्ध कवि, पुष्पदंत, स्वयंभू, देवसेन, योगीन्दु, मुनि रामसिंह, धनपाल, कनकामर मुनि, जिनदत्त सूरि, हेमचन्द्र, हरिभद्र सूरि, विनयचन्द्र, अंबदेव सूरि, शालिभद्र सूरि, सोमभद्र सूरि, जिनपदम् सूरि, राजशेखर सूरि आदि जैन कवि, संदेश रासक के रचयिता अब्दुल रहमान तथा पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दरबरदायी के अतिरिक्त बब्बर, आम्रभट्ट, विद्याधर, लक्खण, जज्जल आदि नये कवि गिनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अज्ञात कवियों की रचनाएँ भी संकलित की गयी हैं।

राहुल जी ने उपर्युक्त 47 कवियों में पाँच कवियों को विशेष महत्व दिया है। उनकी दृष्टि में स्वयंभू न केवल इसयुग के श्रेष्ठ कवि थे अपितु वह भारत के एक दर्जन अमर कवियों में से एक थे। उनकी रामायण और महाभारत दोनों ही अमर कृतियाँ हैं। यही स्थिति पुष्पदंत की थी। राहुल जी ने इस युग के दो कवियों–शांतिपा और आचार्य हेमचन्द्र सूरि को 'कलिकाल सर्वज्ञ' माना है। शांतिपा (1000 ई0) अपने समय के असाधारण पंडित थे। अब उनकी कुछ रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। हेमचन्द्र (1088–1179) असाधारण वैयाकरण और कोशकार थे। उनके द्वारा विरचित 'छन्दोनुशासन' और 'देशी नाममाला' (कोश) अमर कृतियाँ हैं।

अब्दुल रहमान हिन्दी के प्रथम मुस्लिम कवि हैं। राहुल जी ने इनका समय 1010 ई0 (सं0 1067) माना है। इन्होंने 'संदेश रासक' नामक श्रृगारिक काव्य की रचना की थी, जिसमें विजयनगर की एक प्रोषितपतिका नायिका धनार्जन हेतु खम्भात गये हुए अपने पति के पास पथिक द्वारा अपना विरह–संदेश भेजती है। पथिक भी मुलतान से प्रभु का गोपनीय लेख लेकर खम्भात जा रहा है। रासक में तीन प्रक्रम है। प्रथम प्रक्रम में ईश–स्तुति, आत्म–परिचय, कवि वन्दना, द्वितीय प्रक्रम में विजय नगर की प्रियोत्कण्ठिता, विरह विदग्धा नारी की दशा का चित्रण है और तृतीय प्रक्रम में षट्–ऋतु वर्णन के माध्यम से विरह–अवधि का आख्यान है। इसमें कथातत्व अत्यल्प है। काव्य की महत्ता कथानक में न होकर अभिव्यक्ति के ढंग में है। रूप–वर्णन, विरह–वर्णन और प्रकृति–वर्णन की दृष्टि से अब्दुल रहमान श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाने के अधिकारी हैं। राहुल जी के अनुसार 'कवि की वाणी खूब मँजी हुई है। मधुर शब्दों के चुनाव तथा सरल और प्रवाहयुक्त भाषा लिखने में अब्दुल रहमान ने बड़ी सफलता प्राप्त की है। मंगलाचरण की कुछ पंक्तियों को छोड़कर इनकी कविता में धर्म कहीं छू नहीं गया है।'

सहजयानी सिद्धों की संख्या, आविर्भाव–काल तथा भाषा आदि के सम्बन्ध में काफी विवाद रहा है। कुछ विद्वानों ने इन्हें पुरानी

बंगला, कुछ ने उड़िया और कुछ ने असमिया का कवि सिद्ध करने का प्रयास किया है। राहुल सांकृत्यायन ने सिद्धों की भाषा को मगही और मैथिली के निकट बताकर 'पुरानी हिन्दी' सिद्ध किया है। वस्तुतः इन सिद्धों की रचनाओं की खोज और उन्हें हिन्दी का कवि प्रमाणित करने का श्रेय राहुल जी को ही जाता है। उन्होंने कई बार तिब्बत की यात्रा करके इनके न जाने कितने बहुमूल्य साहित्य का न केवल अनुसंधान किया अपितु कई कवियों की रचनाओं का सम्पादन, अनुवाद आदि भी किया। वस्तुतः सिद्ध–साहित्य के उद्धार का उन्होंने जो श्लाघनीय कार्य किया है, वह उनकी अद्भुत खोजी–वृत्ति मेधावी प्रतिभा, लगन, निष्ठा और श्रम का ज्वलंत दस्तावेज है।

वस्तुतः रामचन्द्र शुक्ल ने जब यह निर्णय दे दिया कि सिद्धों और योगियों की रचनाएँ साहित्य की कोटि में नहीं आतीं, तो इसका परिणाम यह हुआ कि परवर्ती कतिपय विद्वानों ने इन्हें साहित्य में अविवेच्य मानकर छोड़ दिया। यद्यपि यह सत्य है कि इन्होंने कविता के लिए कविता नहीं की। इनके लिए कविता साधन थी जिसके द्वारा ये अपने विचारों और सिद्धान्तों को अभिव्यक्त कर रहे थे। फिर भी मात्र दृष्टि–भेद से हम इन्हें साहित्य से बहिष्कृत नहीं कर सकते। वस्तुतः भाषा, काव्य–रूप, छन्द–विधान आदि कई दृष्टियों से इनका विशेष महत्व है। कबीर आदि परवर्ती कवियों में जो मस्ती और अक्खड़पन है, वह इन्हीं सिद्धों की देन है। सिद्धों ने न केवल अपनी विचार–पद्धति से संतों को प्रभावित किया अपितु शैली की दृष्टि से भी परवर्ती हिन्दी काव्य पर इनका व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। इस सम्बन्ध में राहुल सांकृत्यायन का कहना है कि 'यही कवि हिन्दी काव्यधारा के प्रथम दृष्ट्या थे। नये–नये छन्दों की सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व था। इन्होंने दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ छन्दों की सृष्टि की, जिन्हें हिन्दी कवियों ने बराबर अपनाया है। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर और तुलसी के ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं।'

राहुल सांकृत्यायन ने जिन जैन कवियों का उल्लेख किया है, उनमें योगीन्दु मुनि और मुनि रामसिंह रहस्यवादी कवि थे। योगीन्दु मुनि (8वीं–9वीं शती) ने 'परमात्मप्रकाश' और 'योगसार' नामक दो ग्रंथों की रचना की। इनमें जैन मान्यता के अनुसार आत्मा–परमात्मा तथा जीवन की मुक्ति के उपाय का वर्णन है। मुनि रामसिंह 12वीं शताब्दी के कवि थे। इनकी एक रचना 'दोहा पाहुड़' उपलब्ध है। इसमें भी जैन धर्म में स्वीकृत आत्मा के स्वरूप, उसके भेदों तथा सत्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि का वर्णन किया गया है। धनपाल दसवीं शताब्दी के कवि थे। इन्होंने 'भविसयत्तकहा' नामक महाकाव्य की रचना की थी। यह एक प्रेम काव्य है जिसमें गजपुर के एक व्यवसायी भविष्यदत्त की कथा निबद्ध है। हरिभद्र सूरि ने पाटण राजसभा में रहकर 'नेमिनाथ चरिउ' नामक महाकाव्य की रचना की थी। शालिभद्र सूनि ने सं0 1241 में 'भरतेश्वर बाहुबली रास' नामक वीररसात्मक ग्रंथ की रचना की थी। इसे सर्वप्रथम मुनि जिनविजय ने 'भारतीय विद्या भवन' से सं0–1977 में प्रकाशित कराया था। डॉ0 गणपतिचन्द्र गुप्त ने इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि माना है। जिनपद्म सूरि 14वीं शताब्दी के कवि थे। उनके द्वारा रचित द्वारा रचित 'सिरिथूलिभद्र फागु' नामक एक श्रृंगारिक रचना उपलब्ध है। इसमें स्थूलभद्र और कोशा नामक वेश्या के प्रेम का वर्णन है। इसी प्रकार 14वीं शताब्दी में ही विनयचन्द्र सूरि ने 'नेमिनाथ चउपइ' नामक विप्रलम्भ श्रृंगार–प्रधान काव्य की रचना की थी।

जैन कवियों के अतिरिक्त जिन स्फुट कवियों की रचनाओं का 'हिन्दी काव्यधारा में संकलन है उमें कवि बब्बर, आम्रभट्ट, विद्याधर और जज्जल मुख्य कवि हैं। कवि बब्बर कलचुरि नरेश कर्ण (11वीं शती उत्तरार्ध) के दरबारी थे। 'प्राकृत पैंगलम' में पाँच छन्द ऐसे हैं, जिनमें कवि

का नाम बब्बर आया है। इनमे से दो पदों में सुखी जीवन का वर्णन, एक पद में कुलचरि नरेश कर्ण का शौर्य–वर्णन और दो पदों में संसार की नश्वरता का उल्लेख है। राहुल सांस्कृत्यायन ने 'हिन्दी काव्यधारा' में इनके अतिरिक्त और बहुत सी कविताओं का संकलन किया है, जो विभिन्न विषयों सम्बद्ध है। इनमें कुछ कविताओं में बब्बर का नाम नहीं आया है किन्तु राहुल जी का विश्वास है कि ये कर्ण–कालीन जरूर हैं।

सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल (12वीं–13वीं शती) के शासनकाल में गुजरात विद्वानों, वैयाकरणों और कवियों का केन्द्र था। जयसिंह के दरबारी हेमचन्द्र सर्वाधिक प्रसिद्ध आचार्य और वैयाकरण थे। 'प्रबंध चिन्तामणि' में जयसिंह और कुमारपाल के अनेक सभा–कवियों तथा समय–समय पर बाहर से आने वाले और सम्मान पाने वाले कवियों का उल्लेख है। ऐसे कवियों में महाकवि धनपाल, रामचन्द्र सूरि, आम्रभट्ट आदि कवियों के पाटन से सम्बद्ध होने के प्रमाण मिलते हैं। हिन्दी काव्यधारा में पाटन की राजसभा में एक ब्राह्मण कवि आम्रभट्ट की स्फुट कतिताएँ जयसिंह और कुमारपाल की प्रशंसा में लिखी गयी हैं। 'प्रबन्धक चिन्तामणि' में कुमारपाल के एक मंत्री आम्रभट्ट (उदयन के पुत्र) का उल्लेख मिलता है। यहाँ उसे अद्भुत शौर्य–सम्पन्न, स्वाभिमानी, विद्वान तथा जैनधर्मानुयायी बताया गया है। राहुल सांकृत्यायन ने आम्रभट्ट का परिचय देने में 'उपदेश तरंगिणी' (पृ0 64–65) को आधार बनाया है।

राहुल सांकृत्यायन ने 'विद्याधर' नाम एक अन्य कवि की कुछ रचनाएँ संकलित की हैं और उन्हें राज महामंत्री बताया है। जयचन्द की सभा में एक अत्यन्त प्रवीण एवं शास्त्र–ज्ञान सम्पन्न विद्याधर नामक मंत्री रहते थे। प्रबंध चिन्तामणि (मेरुतुगाचार्य) में उन्हें 'सर्वाधिक–भार–धुरन्धर' और 'चतुर्दश विद्याओं के ज्ञात' बताया गया है। ये विद्याधर अच्छे कवि थे और देशी भाषा में भी रचनाएँ करते थे। 'प्राकृत पैंगलम् में भी काशीश्वर की प्रशंसा में विद्याधर द्वारा लिखी गयी गई कविताएं संग्रहीत है।'

राहुल जी ने 'जज्जल' नामक एक अन्य कवि का उल्लेख किया है और उन्हें हमीर का मंत्री तथा सेनापति बताया है। उन्होंने 'हिन्दी काव्यधारा' में जज्जल की कुछ कविताओं को संकलित किया है, जो हमीर की प्रशंसा में लिखी गयी है। इनमें जज्जल का नाम दो स्थानों पर आया है। इससे इतना निश्चित हो जाता है कि हम्मीर की सभा में जज्जल नाम युद्ध–निपुण और वीर मंत्री विद्यमान है।

इनके अतिरिक्त 'हिन्दी काव्यधारा' में पाँच अज्ञात कवियों की रचनाएँ भी संकलित है। राहुल जी को इनके कर्ता का पता नहीं चल सका। किन्तु ये कविताएँ भी उनकी अनुसन्धित्सु–वृत्ति की प्रमाण है। इस प्रकार हिन्दी साहित्येतिहास, विशेषरूप से हिन्दी के प्रथम युग के सम्बन्ध में राहुल जी ने बहुत–सी नयी जानकारी दी है। हम उनकी कुछ मान्यताओं से सहमत भले ही न हो, किन्तु उनके योगदान को नकार नहीं सकते।

संदर्भ

- राहुल सांकृत्यायन : एक दृष्टि–बोध–डॉ0 भगवती प्रसाद शुक्ल
- महापंडित राहुल सांकृत्यायन वीरानी चेतना, डॉ. विमल उपाध्याय
- राहुल जी के भोजपुरी नाटक– डॉ. शिवशंकर उपाध्याय
- महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने संस्मरण– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय
- राहुल जी मध्यकारता में : 1948ई. – डॉ0 परमेश्वरदत्त शर्मा

- राहुल जी : स्मृतियों के गवाह से श्री नर्मदेश्वर शर्मा
- राहुल : एक मूल्यांकन – डॉ. श्याम सुन्दर घोष
- राहुल सांकृत्यायन : बहुआयामी व्यक्तिव – श्री विभूति मिश्र
- महापण्डित राहुल की रचना में विशिष्ट पूर्वग्रह – डॉ. जयशंकर त्रिपाठी।
- सम्मेलन : पत्रिका

Copyright © 2016, Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.